Volume 2; Issue 2
April to Jun 2025
E-ISSN: 3048-6742

Sanskriti-Samvahika

संस्कृति-संवाहिका

Peer Review Indexed Refereed Journal

Quarterly Journal

Editor-in-Chief

Dr. Ashwini Devi

Sanskriti-Samvahika संस्कृति-संवाहिका

E-ISSN: 3048-6742

https://sanskritisamvahika.in

https://doi.org/10.5281/zenodo.1779078

Volume 2; Issue 2; April to Jun, 2025; Page No. 41-52

Peer Review, Indexed and Refereed Journal

संस्कृत साहित्य में वर्णित राजधर्म की वर्तमानकालिक प्रासंगिकता

डॉ.सुमन रानी

सहायक आचार्या, संस्कृत विभाग

हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़

अणु संकेत – sumanrani@gmail.com

शोध सारांश

संस्कृत साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। हजारों वर्षों से संस्कृत साहित्य ने अपने प्रखर ज्ञान से विश्व की अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों के विकास और प्रगति में अपनी भूमिका निभाई है। सार्वभौमिक और सार्वजनिक शिक्षाओं के अलावा संस्कृत साहित्य की एक और विशेषता यह है कि जीवन का शायद ही कोई पक्ष हो जो यहां अछूता रह गया हो। मनु और अन्य स्मृतिकारों ने राष्ट्र को समृद्ध और संगठित बनाने के लिए राजधर्म के सिद्धांतों की रचना की। मनुस्मृति के सातवें अध्याय में राजधर्म वर्णन के संदर्भ में राजाओं के आवश्यक गुणों का उल्लेख करते हुए प्रथम पुरुष मनु कहते हैं कि राजाओं का चरित्र स्तर इतना ऊंचा होना चाहिए कि जनता उनका अनुकरण करे और कोई उन पर उंगली न उठा सके। किसी भी देश का अच्छा और बुरा होना राजा के आचरण पर निर्भर करता है।

मुख्य शब्द: संस्कृत, साहित्य, राजधर्म, प्रासंगिकता

प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। हजारों वर्षों से संस्कृत साहित्य ने अपने प्रखर ज्ञान से विश्व की अनेक सभ्यताओं और संस्कृतियों के विकास और प्रगति में अपनी भूमिका निभाई है। सार्वभौमिक और सार्वजनिक शिक्षाओं के अलावा संस्कृत साहित्य की एक और विशेषता यह है कि जीवन का शायद ही कोई पक्ष हो जो यहां

अछूता रह गया हो। मनु और अन्य स्मृतिकारों ने राष्ट्र को समृद्ध और संगठित बनाने के लिए राजधर्म के सिद्धांतों की रचना की। मनुस्मृति के सातवें अध्याय में राजधर्म वर्णन के संदर्भ में राजाओं के आवश्यक गुणों का उल्लेख करते हुए प्रथम पुरुष मनु कहते हैं कि राजाओं का चरित्र स्तर इतना ऊंचा होना चाहिए कि जनता उनका अनुकरण करे और कोई उन पर उंगली न उठा सके। किसी भी देश का अच्छा और बुरा होना राजा के आचरण पर निर्भर करता है।

राजा और प्रजा के बीच पारस्परिक सहयोग और समन्वय से सभी का कल्याण सुनिश्चित होता है। राजकार्य के संचालन में राजा के आचरण तथा प्रजा के कल्याण की उसकी व्यवस्था के संबंध में स्मृति ग्रंथों में राजधर्म की चर्चा की गई है। संस्कृत साहित्य में वर्णित राजाओं की कार्यशैली तथा शासन व्यवस्था स्मृतियों द्वारा निर्दिष्ट राजधर्म के अनुपालन को दर्शाती है। संस्कृत साहित्य के काव्यों तथा नाटकों में राजा, मंत्री, दण्ड संहिता, कर व्यवस्था, न्याय व्यवस्था आदि का आवश्यकतानुसार सुन्दर वर्णन मिलता है। प्राचीन भारत में राजाओं की शासन व्यवस्था चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट तथा संस्कृत काव्यों में प्रतिपादित राजधर्म की वर्तमान शासन व्यवस्था में बहुत प्रासंगिकता है। हजारों वर्ष पूर्व धर्मशास्त्रों तथा काव्यों में निर्दिष्ट तथा वर्णित ये राजसिद्धांत हमारे लिए न केवल धरोहर हैं, अपितु ये हमारी बुद्धि तथा संवेदनशीलता को भी प्रेरित करते हैं।

रघुवंश में राजधर्म

इसके अतिरिक्त हमें राजनीतिक दण्ड व्यवस्था तथा न्याय के मार्ग पर भी सुन्दर उपदेश मिलता है। रघुवंश में वर्णित राजधर्म न केवल रघुवंशी राजाओं के राजधर्म को व्यक्त करता है, अपितु तत्कालीन शासन प्रणाली के माध्यम से प्रजा के कल्याण का मार्ग भी प्रशस्त करता है। रघुवंशी राजा शास्त्र सम्मत शासन व्यवस्था के वाहक थे। इस दृष्टि से विचार किया जाए, तो रघुवंशी राजाओं का चरित्र वास्तव में अनुकरणीय है। कालिदास ने रघुवंशी राजाओं के चरित्र की शुचिता, कार्य के प्रति दृढ़ता तथा साम्राज्य की विशालता, शास्त्र सम्मत आचरण, मौनव्रत तथा धर्म के प्रति समर्पण का वर्णन इस प्रकार किया है-

सोऽहम् आजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशानाम् आनाकरथवत्र्मनाम् ।।
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।।
त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम्।

यशसे विजिगीषुणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ।।[1]

महाकवि कालिदास द्वारा रचित रघुवंश में राजधर्म का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। कालिदास ने रघुवंश के प्रथम, पंचम, अष्टम और चौदहवें सर्ग में राजधर्म का वर्णन किया है। रघुवंशी राजा अपनी प्रजा के कल्याण के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते थे। रघुवंश के प्रथम सर्ग में कहा गया है कि जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी से जल लेकर हजारों गुना अधिक जल लौटा देता है, उसी प्रकार राजा दिलीप प्रजा के कल्याण के लिए प्रजा से कर वसूलते थे और उसे अपने विकास कार्यों में लगाकर उन्हें लौटाते थे।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।

सहस्रगुणम् उत्स्रष्टुम् आदत्ते हि रसं रविः॥[2]

राजधर्म के अंतर्गत आने वाले "सामदानाद्युपाय" का अनुमान भी राजा दिलीप के गुप्त विचारों से तथा हर्ष-शोक के चिह्नों को छिपाकर लगाया जाता था।

संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च। [3]

राजा दिलीप प्रजा को विनम्रता का पाठ पढ़ाने तथा उनका भरण-पोषण करने के कारण उनका वास्तविक पिता था-

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।

स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥[4]

किसी भी साम्राज्य की सफलता या असफलता प्रशासनिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। यदि प्रशासन गतिशील, व्यवस्थित और संगठित है, तो साम्राज्य मजबूत होगा। रघुवंशी राजाओं में श्रेष्ठ रघु, प्रजा के कल्याण के प्रबल विचारक, इन्हीं गुणों के कारण सफल शासक बने। राजा दिलीप और राजा रघु द्वारा प्रजा के कल्याण के लिए किए गए कार्यों का वर्णन ग्राम बालिकाओं के गीतों में मिलता है। प्रजा द्वारा सीता के बारे में संदेह व्यक्त किए जाने पर राम ने अपने निजी संबंधों के बारे में सोचे बिना, राजकर्तव्य पालन हेतु अपनी पत्नी का परित्याग कर दिया। इस संबंध में महाकवि कालिदास मार्मिक भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं-

कौलीनभीतेन गृहन्निरस्ता न तेन वैदेहसुता

मनस्तः। [5]

अर्थात् लोकनिंदा के भय से श्रीराम ने सीता को घर से तो बाहर भेज दिया, परंतु मन से नहीं। प्रजा में वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करना राजा का अन्य प्रमुख धर्म है। रघुवंश में महाकवि कहते है-

नृपस्य वर्णाश्रमपालनम् यत् स एव धर्मो मनुना

प्रणीतः। [6]

---

[1] श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी, रघुवंश, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन- 2018. 1/5-7

[2] रघुवश, 1/18

[3] रघुवंश, 1/20

[4] रघुवंश, 1/24

[5] रघुवंश, 14/84

आश्रम धर्म के अनुपालन में रघुवंशी राजा प्रजा के लिए आदर्शस्वरूप थे-

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।

वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।। [7]

इस प्रकार कालिदास ने स्मृतियों में प्रतिपादित राजधर्म के माध्यम से प्रजा और राजा के बीच राजनीतिक संबंध को नैतिक और धार्मिक रूप देकर उसे सुदृढ़ रूप प्रदान किया है।

किरातार्जुनीयम् में राजधर्म -

कालिदास के बाद भारवि ने भी अपने काव्य में राजधर्म को भरपूर स्थान दिया। भारवि राजनीति के विशेषज्ञ हैं, राजधर्म के बारे में उनका विशाल ज्ञान युधिष्ठिर की बातों में समाहित है। भीम को समझाते हुए युधिष्ठिर कहते हैं कि बिना सोचे-समझे किया गया काम अनर्थ की ओर ले जाता है। जो व्यक्ति सोच-समझकर काम करता है, उसके गुणों से आकर्षित होकर धन उसके पास खुद ही चला आता है।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः

परमापदाम् पदम् ।

वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः

स्वयमेव सम्पदः ॥ [8]

शत्रु के अपमान को याद करके व्यथित भीम को न्याय के मार्ग पर सुन्दर उपदेश देते हुए युधिष्ठिर कहते हैं कि जो राजा समय पर मृदुता और तीक्ष्णता अपना लेता है, वह सूर्य के समान अपने तेज से सम्पूर्ण जगत को अपने अधीन कर लेता है। भीम को नीति का उपदेश देते हुए धर्मराज कहते हैं कि यद्यपि इस समय दुर्योधन उदय हो रहा है, फिर भी उसकी उपेक्षा करनी चाहिए, क्योंकि उसकी उपेक्षा करके ही दुराग्रही शत्रु को परास्त किया जा सकता है।

विपदन्ता ह्यविनीतसंपदः । [9]

राज्य के व्यवस्थित संचालन के लिए आवश्यक राजनीतिज्ञों की नीतियों का प्रतिपादन करते हुए कवि माघ ने कहा है कि पाँच अंगों के अतिरिक्त राजा के पास समस्त कार्यों में कोई दूसरा मंत्र नहीं होता, जैसे बौद्धों के अनुसार पाँच अंगों के अतिरिक्त शरीर में कोई अन्य आत्मा नहीं होती। राजा के पाँच अंग होते हैं- 1. कार्य प्रारंभ करने की विधि, 2. कार्य की सिद्धि में उपयोगी वस्तुओं का संग्रह, 3. स्थान और काल का उचित विभाजन, 4. विपत्तियों को दूर करने के उपाय, 5. कार्य की सिद्धि।

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्ग स्कन्धपञ्चकम्।

सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो

महीभृताम्।।[10]

---

[6] रघुवंश, 14/67

[7] रघुवंश, 1/8

[8] पंडित दुर्गा प्रसाद, किरातार्जुनीयम्, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई- 1895. 2/30

[9] किरातार्जुनीयम् 2/52

यदि पांचों अंग राजाओं के रहस्यों में सम्मिलित हो जाएं तो उन्हें शांति और युद्ध के लिए परामर्श की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। प्रत्येक राजा को अपने राज्य में इन पांच अंगों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। कवि माघ ने पूर्व बौद्ध दर्शन की मान्यता का प्रतिपादन करते हुए राजनीति का यह परामर्श दिया है।

मुद्राराक्षस में राजधर्म -

काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में भी राजधर्म का वर्णन यत्र-तत्र हुआ है। मुद्राराक्षस नाटक में विशाखदत्त ने राजशास्त्र का विस्तृत परिचय दिया है। विशाखदत्त कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अन्य नीतिशास्त्र से न केवल परिचित थे, अपितु उसके महान विद्वान भी थे। विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में अर्थशास्त्र के राजनीतिक विचारों तथा गजाध्यक्ष, षड्गुण्य, द्रव्य, उपाय, बाह्यकोप, अंतरकोप जैसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग यत्र-तत्र किया है। मुद्राराक्षस के तीसरे भाग में सफल शासन व्यवस्था की चर्चा की गई है। चाणक्य कहते हैं कि-

राज्य के विषय में चन्द्रगुप्त का विचार है-

राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य

नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्। [11]

जो राजा राजधर्म का पालन करने के लिए तत्पर रहता है, उसके लिए राज्य सुख की जगह दुख पैदा करता है, क्योंकि दूसरों के हितों की सेवा करने के लिए राजा को अपने हितों को त्यागना पड़ता है। वह कैसा राजा है, जिसे अपने इच्छित सुखों को त्यागने के लिए मजबूर होना पड़ता है? यदि दूसरों का उद्देश्य उसके लिए अपने स्वयं के उद्देश्य से अधिक महत्वपूर्ण है, तो वह एक गुलाम है। और एक गुलाम कैसे जान सकता है कि सुख का अनुभव करने का आनंद क्या है?

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता

परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः ।

परार्थश्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्

परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः ।। [12]

आचार्य दण्डी ने दशकुमारचरित तथा विश्रुतचरित में राजनीति पर सहज शैली में सुन्दर उपदेश प्रस्तुत किया है। वृद्ध मंत्री तथा सुरक्षित अनन्तवर्मा को उपदेश देते हुए वे कहते हैं, "बुद्धिहीन राजा उन्नतिशील होने पर भी दूसरों के द्वारा आक्षेप किये जाने पर अपने को नहीं रोक पाता। वह साधन और साध्य को पृथक करके कोई कार्य नहीं कर पाता। निश्चित व्यवहार में कुशलता न होने के कारण वह प्रत्येक कार्य में असफल होता है तथा स्वयं तथा दूसरों द्वारा अपमानित होता है। लोग उसका अनादर

[10] शिशुपालवध 2/26

[11] मुद्राराक्षस, अंक-3

[12] मुद्राराक्षसम्, 3/4

करने लगते हैं तथा प्रजा के कल्याण में उसकी आज्ञा विफल हो जाती है। अतः बाह्य ज्ञान में रुचि छोड़कर तुम्हें राजनीति के अपने पारिवारिक ज्ञान (दण्डनीति) का अभ्यास करना चाहिए। इसका अभ्यास करने से तुम्हें सभी शक्तियाँ तथा सिद्धियाँ प्राप्त होंगी तथा तुम बिना किसी बाधा के सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन कर सकोगे।[13]

संस्कृत साहित्य के आधुनिक नाटक भारतविजयनाटक के प्रथम अंक में भी राजधर्म का वर्णन किया गया है। दानशाह ने शिराज को व्यभिचारी, भ्रष्ट, राजधर्म से रहित तथा उसकी मानसिकता का वर्णन किया है। उत्तर में शिराज ने दानशाह से कहा है कि वर्तमान में मैं मायावी लोगों के जाल से मुक्त हूं, अन्यथा मैं राजधर्म को भलीभांति जानता हूं। स्वयं को राजधर्म का विशेषज्ञ बताते हुए शिराज कहता है कि बुद्धिमान व्यक्ति को धर्म और धन में बाधा नहीं डालनी चाहिए तथा धर्म और काम में बाधा नहीं डालनी चाहिए तथा धर्म और धन में बाधा नहीं डालनी चाहिए। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आक्रमण तथा विपत्ति के समय अपनी प्रजा का पालन करना राजा का धर्म है।

अर्थकामौ न धर्मेण प्रबाधेत विचक्षणः।
धर्मकामौ न चार्थेन न कामेनेतरद् द्वयम्।
ईतावापत्तिकाले च प्रजानां पालनं चरेत्।
व्यसनाद् भयतो रक्षेदेष धर्मो महीपतेः ॥[14]

अंत में कौटिल्य के शब्दों में, "राजा का सुख उसकी प्रजा के सुख में निहित है, उसे अपनी प्रजा के हित में अपना हित देखना चाहिए। राजा का हित इसमें नहीं है कि उसे क्या पसंद है, उसका हित इसमें है कि उसकी प्रजा को क्या पसंद है-

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां तु हि ते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।।[15]

संस्कृत काव्यों में अनेक स्थानों पर वर्णित इन शिक्षाओं का पालन करने से तत्कालीन शासकों की नैतिकता, चरित्र की पवित्रता तथा प्रजा के प्रति प्रेम को जाना जा सकता है। वस्तुतः वर्तमान शासन व्यवस्था का मूल धर्मसूत्र एवं धर्मशास्त्र है, जिसका विस्तार संस्कृत साहित्य में हुआ है। हजारों वर्ष बाद भी स्मृति ग्रंथों में वर्णित तथा संस्कृत काव्यों में राजाओं के शासन में अपनाए गए राजधर्म सिद्धांतों ने वर्तमान शासन व्यवस्था में महान योगदान दिया है। यद्यपि हजारों वर्ष पूर्व बनाए गए ये सिद्धांत भिन्न परिस्थितियों में लिखे गए थे, किन्तु वे आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। यदि वर्तमान शासक धर्मशास्त्र में वर्णित इन राजधर्म गुणों का वर्तमान शासन व्यवस्था में पालन करें, तो निश्चय ही प्रजा का

[13] श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी, दशकुमारचरितम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन- 2010. अष्टमउच्छवास, पृ.-255, 56

[14] भारतविजयनाटकम् 1/18-19

[15] वाचस्पति गैरोला, अर्थशास्त्रम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी- 2000. 1/19/34

कल्याण हो सकता है। किन्तु संस्कृत साहित्य में वर्णित राजधर्म सिद्धांतों की हजारों वर्ष बाद भी प्रासंगिकता यह सिद्ध करती है कि ये रचनाएं कालजयी हैं।

मनुस्मृति में राजधर्म -

मनुस्मृति के 7वें अध्याय में राजधर्म की चर्चा की गई है। मनु ने प्राचीन काल में राष्ट्र रक्षा, राजधर्म और मानव धर्म के मापदंडों के माध्यम से मानव जीवन को उन्नत, प्रगतिशील बनाने तथा राष्ट्र को सुदृढ़ और सुव्यवस्थित बनाने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है। अपने इस ग्रंथ में उन्होंने जहां मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कारों का वर्णन किया है, वहीं मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए राजधर्म का भी वर्णन किया है। इस महान ग्रंथ के माध्यम से उन्होंने मानव समाज को संगठित और विकसित करने के लिए विभिन्न माध्यमों से राजधर्म की व्याख्या की है तथा राजा, मंत्री, सभा के सदस्यों, प्रजा तथा उन पर लागू दंड संहिता, कर प्रणाली और न्याय प्रणाली का बहुत ही सुंदर वर्णन किया है।

स्वाम्यमात्यौ पुरं राष्ट्र कोशदण्डौ सुहृत तथा।
सप्त प्रकृतियो होताः सप्ताऽङ्गे राज्यमुच्यते ।।[16]

लगभग सभी धर्मशास्त्रीय ग्रंथ राजा या स्वामी या शासक की आवश्यकता पर जोर देते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि इन देवताओं ने राजा की अनुपस्थिति में अपनी दुर्दशा को देखते हुए सर्वसम्मति से एक राजा का चुनाव किया। रणनीतिक आवश्यकता स्वामित्व या नेतृत्व की ओर ले जाती है। मनु ने कहा:

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥ [17]

इस जगत में राजा न होने से सब भय से व्याकुल होते हैं, इसलिये इस सबकी रक्षा के लिये ईश्वर ने राजा को उत्पन्न किया है। राजा इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर का सारभूत अंश होता है, इसमें उक्त देवताओं की दीप्ति विद्यमान रहती है।

इसीलिए वह इन्द्र के समान सामर्थ्यशाली, वायु के समान सबको प्रिय, यमराज के समान निष्पक्ष न्यायकर्ता, सूर्य के समान तेजस्वी, अग्नि के समान दुष्टविनाशक, वरुण के समान अन्यायी को बांधने वाला, चन्द्रमा के समान आह्लादक और कुवेर के समान धन-धान्य से सम्पन्न होता है। इससे यह भी अभिव्यञ्जित होता है कि बालक राजा भी आदरणीय और पूज्य होता है, क्योंकि वह नररूप में देवता ही होता है और इन इन्द्रादि देवताओं के अंशों से निर्मित होने के कारण राजा सब प्राणियों से अधिक तेजस्वी होता है।

क्षत्रियस्य परोधर्मः प्रजानामेव पालनम्।

[16] मनुस्मृति, ९/२९४

[17] मनुस्मृति, 7.3-5

निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते।। [18]

प्रजापालन ही क्षत्रिय का श्रेष्ठ धर्म है इसलिये शास्त्रोक्तफल (कर आदि) का भोक्ता राजा धर्म के फल का भोक्ता होता है।

राजा के सर्वश्रेष्ठ धर्म का यहाँ उल्लेख है। क्षत्रिय या राजा का सर्वोत्कृष्ट धर्म अपनी प्रजा का पालन करना है तथा शास्त्रों में जिन कर्त्तव्यों का कथन किया गया है उनको करके प्राप्त फलों का भोग करने वाला राजा ही वस्तुतः राजधर्म से युक्त होने का अधिकारी होता है। इसलिए राजा को राजधर्म का पालन करने हेतु अपनी प्रजा का तन, मन और धन से पालन करना चाहिए।

यस्य प्रसादे पद्मा श्रीर्विजयश्च पराक्रमे।

मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः॥ [19]

जिसके प्रसन्न होने पर बहुत सी लक्ष्मी निवास करती हैं, अर्थात प्रसन्न होने पर बहुत सा धन देती हैं, जिसके पराक्रम से विजय होती है और जिसके कोप से मृत्यु होती है, ऐसा राजा समस्त तेजों का स्वरूप है।

शुचिना सत्यसन्धेन यथाशास्त्रानुसारिणा।

प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥

स्वराष्ट्र न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु।

सुहृत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषु क्षमान्वितः॥

एवं वृत्तस्य नृपतेः शिलोच्छेनापि जीवतः।

विस्तीर्यते यशो लोके तैलबिन्दुरिवाम्भसि ॥ [20]

मनु के अनुसार राज्जा में ये गुण होने चाहिए-राजा पवित्र, सत्यवादी, शास्त्रों के अनुसार कार्य करने वाला, बुद्धिमान, दण्ड का उचित प्रयोग करने वाला, शत्रुओं को कठोर दण्ड देने वाला, मित्रों से सरल व्यवहार करने वाला, वाइरणों के पति दयाभाव वाला, वर्षों और आश्रमों का रक्षक, बाह्राणों विद्वानों और वेदज्ञों की सेवा करने वाला, वृद्धों का आदर करने वाला, विनीत, वेदजवी, दण्डनीति, तर्कशास्त्र, आत्मविधा, व्यापार और वाषिन्य विधा को जानने वाला, संवमी, काम और कोच से उत्पन्न होने वाले दोषों से रहित, विलोम, मधपाव, दुआ, स्त्रीपसंम, आखेट तथा कटुवधव और अर्थदोष से रहित हो।

पैशुन्यं साहसं ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्।

वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ।।

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः।

तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ।।

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।

एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे।।

दण्डस्य पातनं चैव वाक्यापारुष्यार्थदूषणे।

क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत् त्रिकं सदा।। [21]

---

[18] मनुस्मृति, 7.144

[19] वहीं, 7/11

[20] वहीं, ७/३१-३२

[21] मनुस्मृति, ७.४८-५१

चुगली, दुराग्रह, द्रोह, ईर्ष्या, द्वेष (गुणों को दोष मानना), दूसरे की संपत्ति चुराना, कटु वचन बोलना और अनुचित दण्ड देना, ये आठ दोष क्रोध से उत्पन्न होते हैं। विद्वान लोग कहते हैं कि इन दोनों वर्गों का मूल कारण लोभ है, इसलिए राजाओं को लोभ को त्यागने का हरसंभव प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि ये दोनों (दोष) लोभ से ही उत्पन्न होते हैं। मद्यपान, जुआ खेलना, स्त्रियों में आसक्त होना और शिकार खेलना - इन दस प्रकार के कामजनित दोषों में से राजा को इन चार को अत्यंत दुःखदायी समझना चाहिए। क्रोधजनित आठ प्रकार के दोषों में से अन्यायपूर्वक दण्ड देना, कटु वचन बोलना और दूसरे की संपत्ति चुराना - इन तीन को राजा को सदैव अत्यंत घातक समझना चाहिए।

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्य वीक्ष्य महीपतिः।

तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति संमतः॥ [22]

राजा को अपने कर्मों के अनुसार कोमल या कठोर होना चाहिए, क्योंकि जो राजा अपने कर्मों के अनुसार कोमल या कठोर होता है, वह सभी को प्रिय होता है।

आर्यता पुरुषज्ञानं शौर्य करुणवेदिता।

स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः॥ [23]

साधुता, व्यक्ति विशेष की पहचान, वीरता, सज्जनता, दयालुता और महान उदारता उदासीन राजा के गुण हैं। ऐसे राजा के सहयोग से विद्वान व्यक्ति शत्रु राजा से भी युद्ध कर सकता है। राजा में आर्यत्व, पुरुयों को पहचानने की शक्ति, सुरवीरता, दयालुता, दानशीलता तथा सुख-दुःख आदि के प्रति उदासीनता आदि गुण होने चाहिए।

याज्ञवल्क्यस्मृति में राजधर्म –

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः।

विनीतः सत्त्वसंपन्नः कुलीनः सत्यवाक्शुचिः॥

अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानक्षुद्रोऽपरुषस्तथा।

धार्मिकोऽव्यसनचैव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित्॥

स्वरन्ध्रगोप्ताऽऽन्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च।

विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः॥ [24]

राजा को महान् उत्साही, बहुत अर्थ (धन) देने वाला, कृतज्ञ, वृद्धोपसेवी, विनीत, सत्त्वयुक्त (संपत्ति और आपत्ति में हर्ष-विषाद रहित), कुलीन, सत्यवादी, (बाह्यान्तर से) पवित्र, आलस्य-रहित, (ज्ञात पदार्थों का) स्मरण रखने वाला, अक्षुद् (असद्गुणद्वेषी अर्थात् सद्गुणसंपन्न), अकठोर (परदोष का न कथन करने वाला), धार्मिक (मृगयाक्ष आदि) व्यसन से रहित, बुद्धिमान्, वीर, रहस्य के गोपन में निपुण, अपने राज्याङ्गों के छिद्रों (प्रवेश द्वारों) को छिपाने वाला तथा आन्वीक्षिकी

[22] वही, 7/140

[23] वहीं, 7/211

[24] याज्ञ. स्मृ, १.३०९-३११

(आत्मविद्या), दण्डनीति (नय-अनय) तथा वार्ता (कृषि आदि) इसी त्रयी विद्या में विनीत (अधिकारी विद्वानों द्वारा निपुण किया हुआ) होना चाहिये।

स मन्त्रिणः प्रकुर्वीतप्राज्ञान्मौलान्स्थिराञ्युचीन्।
तैः सार्धं चिन्तयेद्राज्यं विप्रेणाथ तैतः स्वयम् ॥
पुरोहितं प्रकुर्वीत दैवज्ञमुदितोदितम् ।
दण्डनीत्यां च कुशलमथर्वाङ्गिरसे तथा ।।
श्रौतस्मार्तक्रियाहेतोर्वृणुयादेव चत्विजः ।
यज्ञांश्चैव प्रकुर्वीत विधिवद्भूरिदक्षिणान् ॥ [25]

वह बुद्धिमान, कुलीन (कुल परम्परा से आने वाले), स्थिर (विरोध और हर्ष में स्थिर रहने वाले) और धर्मात्मा व्यक्तियों को मंत्री नियुक्त करे। (उनके साथ राज्य के कार्यों (संधि-विग्रहादि) पर चर्चा करे। तत्पश्चात ब्राह्मण (पुरोहित) से परामर्श करे। तत्पश्चात स्वयं निर्णय करे। वह दैवज्ञ (ग्रहों के नाश और शमन में विशेषज्ञ), ज्ञान और कर्मकाण्ड में निपुण, दण्डनीति (अर्थशास्त्र) में निपुण और अथर्वांगिरस (शांतिपूर्ण और गंभीर कर्मों का प्रणेता) शास्त्र में निपुण व्यक्ति को पुरोहित नियुक्त करे। श्रौत (अग्निहोत्रादि) और स्मार्त (उपासनादि) कार्यों की सिद्धि के लिए ऋत्विजों को चुनकर उनसे विधिपूर्वक तथा यथोचित दक्षिणा देकर (राजसूय आदि) यज्ञ कराए। तत्पश्चात् अपने (मंत्री आदि) लोगों तथा अन्य लोगों के पास दूत भेजो। (प्रातःकाल संध्यावंदन करके) ऋत्विकों, पुरोहितों तथा गुरुजनों को नमस्कार करो। तत्पश्चात् ज्योतिषियों तथा वैद्यों के पास जाओ (उनसे मिलो) तथा श्रोत्रिय ब्राह्मणों को गौ, स्वर्ण, भूमि, नैवेशिक (विवाहयोग्य कन्याओं के लिए आभूषण) तथा मकान दान करो।

ब्राह्मणेषु क्षमी स्निग्धेष्वजिनः क्रोधनोऽरिषु ।
स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता ॥
पुण्यात्पड्गागमादत्चे न्यायेन परिपालयन् ।
सर्वदानाधिकं यस्मात्प्रजानां परिपालनम् ॥
चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः ।
पीड्यमानाः प्रजा रक्षेत्कायस्यैश्च विशेषतः ॥ [26]

राजा को ब्राह्मणों में क्षमाशील, मित्रों में सरल, शत्रुओं में क्रोधी तथा सेवकों और प्रजा के लिए पिता के समान होना चाहिए। जो राजा न्यायपूर्वक अपनी प्रजा का पालन करता है, उसे अपनी प्रजा के पुण्य का छठा भाग प्राप्त होता है। इसलिए प्रजा का पालन करना सभी दानों में श्रेष्ठ है। छल-कपट, चोर, दुष्ट लोगों (जादूगर, धूर्त, दुस्साहसी और लोगों की हिम्मत छीनने वाले) से पीड़ित प्रजा की रक्षा करो और विशेष रूप से अत्याचारियों से पीड़ित प्रजा की रक्षा करो। असुरक्षित प्रजा जो भी पाप करती है, उसका आधा हिस्सा राजा का होता है, क्योंकि राजा उनसे (रक्षा के लिए) कर वसूलता

[25] वहीं, १.३१२-३२४

[26] वहीं, १.३३४-३४३

है। गुप्तचरों द्वारा राज्य में नियुक्त लोगों के कार्यों को जानकर राजा को पुण्यात्माओं का सम्मान करना चाहिए और दुष्कर्मियों को (उनके अपराध के अनुसार) दण्ड देना चाहिए। राजा को चाहिए कि जो लोग रिश्वत लेकर जीविका चलाते हैं, उनका धन छीनकर उन्हें राज्य से निकाल दे। उसे श्रोत्रियों को दान, आदर और सत्कार देकर सदैव प्रसन्न रखना चाहिए। जो राजा अभ्यासपूर्वक अपनी प्रजा (प्रजा) से धन लेकर अपने कोष को बढ़ाता है, वह शीघ्र ही अपने मित्रों और सम्बन्धियों के साथ रहने योग्य हो जाता है। वह दरिद्र होकर नष्ट हो जाता है। अपनी प्रजा पर अत्याचार करने की पीड़ा से उत्पन्न अग्नि राजा के परिवार, धन और जीवन को जलाए बिना वापस नहीं लौटती। राजा को अपने राष्ट्र पर (न्यायपूर्वक) शासन करते समय जो धर्म प्राप्त होता है, वही धर्म उसे दूसरे राज्य पर शासन करते समय प्राप्त होता है। जब कोई दूसरा राज्य उसके अधीन आ जाए, तो उसे उस देश की रीति-रिवाजों और कुलपरम्पराओं के अनुसार ही उस पर शासन करना चाहिए।

अर्थशास्त्र में राजधर्म

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजधर्म की चर्चा है।

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।

नात्मप्रियं प्रियं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं प्रियम् ॥ [27]

अर्थात् राजा का सुख उसकी प्रजा के सुख में है, उसका हित उसकी प्रजा के कल्याण में है। राजा का कोई निजी हित नहीं होता, उसकी प्रजा का कल्याण ही उसका सर्वोपरि है।

तस्मात् स्वधर्म भूतानां राजा न व्यभिचारयेत्।

स्वधर्म सन्दधानो हि, प्रेत्य चेह न नन्दति ॥ [28]

अर्थात राजा को अपनी प्रजा को उसके धर्म से विचलित नहीं होने देना चाहिए। राजा को भी अपने धर्म का पालन करना चाहिए। जो राजा इस प्रकार अपने धर्म का पालन करता है, वह इस लोक और परलोक में सुखी रहता है। राजा का कर्तव्य केवल युद्ध के मैदान में अपने शत्रुओं का वध करना ही नहीं है, बल्कि अपनी प्रजा की रक्षा करना भी है।

राजा राज्यमिति प्रकृतिसंक्षेपः ।[29]

कौटिल्य के अनुसार, वह राजा ही है जो मंत्रियों, कर्मचारियों और अधीक्षकों की नियुक्ति करता है। वह प्राकृतिक आपदाओं के पीड़ितों की मदद करता है। यदि राजा समृद्ध है, तो वह अपनी प्रकृति को भी समृद्ध करता है, और प्रकृतियाँ समान गौरव प्राप्त करती हैं। इसलिए राजा स्थिर और शक्ति का केंद्र होता है। वेतनभोगी राजा। कौटिल्य ने यह सिद्धांत भी प्रस्तुत किया कि राजा को कहीं और

[27] अर्थशास्त्र, 1.19

[28] अर्थशास्त्र, 1.3

[29] अर्थशास्त्र, 8.2.1

वेतन मिलता था। अर्थशास्त्र में लिखा है कि एक अच्छे राजा को युद्ध की शुरुआत में अपने सैनिकों को इस तरह भेजना चाहिए। मैं आपकी तरह ही एक वेतनभोगी कर्मचारी हूँ। मुझे आपके साथ इस राज्य का आनंद लेना है। आपको मेरे द्वारा बताए गए दुश्मन को हराना होगा।

संदर्भ सूची

- गिरिधर गोपाल शर्मा, मनुस्मृति , चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनर्मुद्रित संस्करण 2020.
- जगदीश चन्द्र मिश्र, मुद्राराक्षसम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी- 2013.
- डॉ.कपिलदेव आचार्य् द्विवेदी, अभिज्ञान शाकुन्तलम् , रामनारायणलाल विजयकुमार कटरा रोड.इलाहाबाद 2002.
- डॉ.गंगासागर राय, कर्णभारम्, चौखंभा संस्कृत भवन, 2015.
- डॉ.राकेशकुमार जैन, कर्णभारम् , हंसा प्रकाशन, जयपुर 2019.
- डॉ.श्री कृष्ण ओझा, प्रतिमानाटयम् , आदर्श प्रकाशन,जयपुर 1960.
- पंडित दुर्गा प्रसाद, किरातार्जुनीयम्, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई- 1895.
- प्रो. विश्वेश्वर झा, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मनीष प्रकाशन वाराणसी 2012.
- मोतीलालबनारसीदास, भारतविजयनाटकम्, नई दिल्ली-2006.
- राम जी लाल शर्मा, शिशुपालवध, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन-2011.
- रूप नारायण त्रिपाठी, माणिक्य लाल शास्त्री प्रतिमानाटयम् , हंसा प्रकाशन, जयपुर 2017.
- वाचस्पति गैरोला, अर्थशास्त्रम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी- 2000.
- श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी, दशकुमारचरितम्, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन- 2010.
- श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी, रघुवंश, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन- 2018.